**ओ३म्**

**‘आर्यसमाज के वेदसम्मत 10 नियमों के आदर्श पालक ऋषि दयानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

आर्यसमाज की स्थापना 10 अप्रैल, सन् 1875 को ऋषि दयानन्द सरस्वती ने मुम्बई में की थी। इसका उद्देश्य था विलुप्त वेदों की यथार्थ शिक्षाओं का जन-जन में प्रचार और उसके अनुरूप समाज व देश का निर्माण। महर्षि ने आर्यसमाज की स्थापना उनके वेद विषयक विचारों के प्रशंसकों वा अनुयायियों के अनुरोध पर की थी। आर्यसमाज की स्थापना की आवश्यकता क्यों पड़ी, यह प्रश्न समीचीन है। महर्षि दयानन्द ने सप्रमाण यह तथ्य देश की जनता के सामने रखा था कि सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल के लगभग 1.960848 अरब वर्षों में भारत सहित भूमण्डल पर वेदों का प्रचार प्रसार था, आर्यों का सार्वभौमिक चक्रवर्ती राज्य था और वेदों के अनुसार ही सर्वत्र व्यवस्थायें एवं परम्परायें प्रचलित थी। महाभारत युद्ध एक ऐसा महायुद्ध था जिसमें विश्व के अनेक देशों के राजाओं ने कौरव व पाण्डव पक्ष में सम्मिलित होकर युद्ध में भाग लिया था। इस युद्ध में जो विनाश हुआ उसका प्रभाव भारत व सम्पूर्ण पर पड़ा। महाभारत युद्ध के इस दुष्प्रभाव के कारण राजनैतिक, सामाजिक व शैक्षिक सभी व्यवस्थायें अस्त-व्यस्त हो गईं थीं। इसका कुपरिणाम यह भी हुआ कि धर्म व सामाजिक परम्परायें जो वेद के अनुसार चलती थी, वेदों के समुचित अध्ययन-अध्यापन न होने के कारण उनमें अज्ञान व अंधविश्वास उत्पन्न होने लगे। इसका एक कारण यह था कि ऋषि मुनियों द्वारा वेद के गम्भीर विषयों पर जो व्यवस्थायें दी जाती थीं, ऋषियों की अनुपस्थिति के कारण वह परम्परायें भी समाप्त प्रायः हो चुकी थी। अज्ञान व अन्धविश्वास उत्पन्न होने आरम्भ हुए और समय के साथ साथ इनमें वृद्धि होती गई।

हमारा देश वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था जिसमें ब्राह्मण वर्ण अन्य तीन वर्णों की अपेक्षा प्रमुख था। ब्राह्मणों के कर्तव्य हैं वेदों का पढ़ना व पढ़ाना, यज्ञ करना व कराना तथा दान देना व दान लेना। ऋषियों व वेदों के मर्मज्ञ विद्वान न होने के कारण अल्पज्ञ पण्डितों में अज्ञान के कारण देश व समाज में अनेक मिथ्या विश्वास प्रचलित हुए जो आज तक चले आयें हैं और उनमें उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। यदि मुख्य अन्धविश्वासों की चर्चा करें तो इनमें मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, अवतारवाद, मृतक श्राद्ध, स्त्री व शूद्रों को वेदाध्ययन व विद्याध्ययन से वंचित करना आदि सम्मिलित थे। गुरुलीय शिक्षा प्रणाली भी ध्वस्त हो गई व वेदाध्ययन भी समाप्त प्रायः हो गया। अज्ञान व अन्धविश्वासों के ही कारण समाज में जन्मना शूद्र वर्ण व दलित बन्धुओं के प्रति असमानता, अप्रीति, अस्पर्शता की भावना, उन पर नाना प्रकार का अन्याय, शोषण व उन्हें मनुष्योचित सामान्य अधिकारों तक से वंचित किया गया। उनके प्रति ऐसे कठोर विधान भी किये गये जो निन्दनीय थे। अतः इन सभी अन्धविश्वासों व मिथ्या परम्पराओं से समाज कमजोर होता रहा और परिणामतः मुस्लिमों व उसके बाद अंग्रेजों का गुलाम हो गया। आज भी अज्ञान व अन्धविश्वास की यह बुराई समाप्त व कम होने के स्थान पर वृद्धि को ही प्राप्त हो रही है जिससे देश के भविष्य पर भी प्रश्न चिन्ह लग गया है।

सन् 1863 में मथुरा में प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती से अपना अध्ययन पूरा कर ऋषि दयानन्द (1825-1883) कार्यक्षेत्र में उतरते हैं। इससे पूर्व वह प्रायः सारे देश का भ्रमण कर देश में अविद्या के विविध हानिकारक प्रभावों का प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके थे। अध्ययन की समाप्ति पर स्वामी दयानन्द ने मथुरा से आगरा जाकर धर्म प्रचार आरम्भ कर दिया। आगरा में रहते हुए उन्होंने वेदों की आवश्यकता अनुभव की और उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न किये। वेदों की प्राप्ति के लिए उन्होंने ग्वालियर, कैरोली, जयपुर आदि की यात्रा की। अनुमान है कि उन्हें कैरोली में वेद प्राप्त हुए और वहां पर्याप्त समय रूक कर उन्होंने वेदों का पर्यालोचन, सूक्ष्म अध्ययन किया और उससे उन्हें जो बोध हुआ उसका मंथन कर युक्ति व तर्क की सहायता से धार्मिक व सामाजिक विषयों से संबंधित सत्य व असत्य मान्यताओं का निर्धारण किया। वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि संसार के समस्त साहित्य में वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है और धर्म विषयक सभी मान्यताओं की परीक्षा व उनके निर्धारण में यही स्वतः प्रमाण व परम प्रमाण है। इसके बाद समय समय पर उन्होंने ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना की सन्ध्या की पुस्तक, भागवत पुराण की मिथ्या मान्यताओं का खण्डन, समस्त वैदिक सिद्धान्तों, आर्यावत्र्तीय एवं विदेशी मतों की समीक्षाओं से युक्त विश्व के अद्वितीय ग्रन्थ **‘‘सत्यार्थ प्रकाश”** की रचना की। स्वामी जी के इन लेखन कार्यों व उपदेशों से प्रभावित होकर समाज के निष्पक्ष एवं बुद्धिमान प्रगतिशील लोगों ने अपने पूर्व मतों को छोड़कर वेदमत को स्वीकार किया। सन् 1869 में आपने काशी में मूर्तिपूजा पर वहां के दिग्गज लगभग 30 विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ किया। इस शास्त्रार्थ में प्रतिपक्षी विद्वान स्वामी जी के मूर्तिपूजा विषयक प्रक्ष्नों के वेद से प्रमाण प्रस्तुत न कर पाये जिससे मूर्तिपूजा को वेद सम्मत सिद्ध नहीं किया जा सका। वेदों में मूर्तिपूजा का विधान न होने से मूर्तिपूजा वेद सम्मत सिद्ध नहीं हुई। सन् 1875 तक स्वामी दयानन्द जी देश के अनेक भागों व प्रान्तों में घूम घूम कर वेदोपदेश आदि के द्वारा प्रचार व जागृति उत्पन्न करते रहे और यथावसर अन्य मतों के विद्वानों से शास्त्रार्थ, शंका समाधान व शास्त्र चर्चा भी करते रहे। उनके द्वारा नये नये ग्रन्थों का लेखन भी जारी रहा। **आपके सत्यार्थप्रकाश से इतर तीन प्रमुख ग्रन्थ ‘ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका’, ‘संस्कार विधि’ एवं ‘आर्याभिविनय’ हैं।** इन कार्यों को सम्पन्न करने के बाद आपने चार वेदों का सरल व सुबोध संस्कृत-हिन्दी भाष्य का कार्य भी आरम्भ किया। मृत्यु के समय तक आपने यजुर्वेद का भाष्य पूरा कर प्रकाशित करा दिया था। 10 मण्डलों वाले ऋग्वेद का भाष्य जारी था जिसमें से प्रथम 6 मण्डलों का पूर्ण एवं सातवें मण्डल का आंशिक भाष्य स्वामी जी द्वारा पूर्ण हो सका। इन सभी ग्रन्थों के अतिरिक्त स्वामी जी ने अनेक लघु ग्रन्थ भी लिखे हैं जिनमें से कुछ हैं पंचमहायज्ञ विधि, चतुर्वेद विषय सूची, व्यवहारभानु, गोकरूणानिधि, आर्योद्देश्यरत्नमाला, संक्षिप्त आत्मकथा, संस्कृत वाक्य प्रबोघ आदि अनेक ग्रन्थ। स्वामी जी ने संस्कृत व्याकरण के भी अनेक ग्रन्थों की रचना की है।

मुम्बई में स्वामी जी के प्रवास के अनन्तर आपके अनेक भक्तों ने आपसे वेदों का प्रचार प्रसार करने के उद्देश्य से आर्यों का देश स्तर का एक संगठन बनाने हेतु आर्यसमाज की स्थापना करने का अनुग्रह किया। स्वामी जी ने इस पर विचार किया और कुछ चेतावनी देते हुए इसकी अनुमति दी और 10 अप्रैल, 1875 को मुम्बई के गिरिगांव मुहल्ले में आर्यसमाज की स्थापना सम्पन्न हो गई। आर्यसमाज की स्थापना के अनन्तर इसके उद्देश्य व नियम निर्धारित हुए जिनका बाद में संशोधन कर इनकी संख्या 10 निर्धारित हुई। यह नियम हैं, 1-सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है। 2- ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्र्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है। 3- वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है। 4- सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये। संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। 7- सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानसुार यथायोग्य बरतना चाहिये। 8- अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये। 9- प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज के जो उपर्युक्त 10 नियम बनायें हैं वह संसार में विद्यमान सभी सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं में सर्वोत्तम एवं स्वर्णिम नियम हैं। स्वामी दयानन्द जी के जीवन में इन सभी नियमों का जीवन्त आदर्श रूप देखने को मिलता है। प्रथम नियम की बात करें तो यह विज्ञान से सम्बन्धित है। ईश्वर सभी सत्य विद्याओं का आदि मूल है, अन्य कोई सत्ता नहीं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि यह संसार अभाव से और न बिना किसी कर्ता के उत्पन्न हुआ है। ऋषि दयानन्द द्वारा निर्मित यह नियम विज्ञान की कसौटी पर भी सत्य सिद्ध होता है। हमें नहीं लगता की कोई मनुष्य या वैज्ञानिक किसी युक्ति व तर्क से इसे अस्वीकार कर सकता है। अस्वीकार करने का अर्थ ईश्वर को न मानना और फिर सृष्टि को बिना कर्ता के मानना होगा जो कि असम्भव होने से अस्वीकार्य है। ईश्वर ही इस सृष्टि का निमित्त कारण है। ऋषि दयानन्द ने इस नियम को बनाया भी और यह उनके जीवन में उनके उपदेशों व लेखन में यह नियम सम्पूर्णता से स्वीकार्य दृष्टि गोचर हुआ है। इसका उदाहरण उनका ईश्वर के प्रति पूर्ण विश्वास और समर्पण का होना भी रहा है। दूसरे नियम में ईश्वर के जो गुण, कर्म, स्वभाव आदि बताये व कहे हैं, उन्हें स्वामी दयानन्द जी ने अपने सभी ग्रन्थों में वेद प्रमाणों, तर्क व युक्तियों से सत्य सिद्ध किया है। उनके जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्होंने इस नियम में विश्वास रखा व उसके अनुरूप ही व्यवहार भी किया।

तीसरा नियम वेद के संबंध में है। स्वामी जी ने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करने सहित उसे सब सत्य विद्याओं का पुस्तक बताया व सिद्ध किया है। स्वामी दयानन्द की पुस्तक ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका इस तीसरे नियम को अनेकानेक उदाहरणों व विविध विषयों के वर्णनों से सत्य सिद्ध करती है। वैदिक विज्ञान विषय पर पं. कपिल देव द्विवेदी जी ने पुस्तक लिख कर इस नियम की पुष्टि की है। आर्य विद्वानों के प्रायः सभी ग्रन्थ इसका समर्थन करते हैं। स्वामी दयानन्द का जीवन भी इस नियम के पालन व इसके प्रचार के लिए ही समर्पित था। आज भी यह सिद्धान्त अकाट्य होने से स्वामी दयानन्द दिग्विजयी हैं। चैथे नियम से दसवें नियम तक के सात नियम सभी मनुष्यों व सभी मतों-सम्प्रदायों द्वारा स्वीकार्य नियम हैं। यह नियम एक प्रकार से वैश्विक सत्य अर्थात् यूनिवर्सल ट्रूथ हैं। इनका कोई विरोध नहीं कर सकता। स्वामी जी का जीवन इन नियमों की शिक्षाओं व भावनाओं से ओत-प्रोत था जिसका अनुभव हर पाठक करता है जिसने उनके सभी जीवन चरित व ग्रन्थों को पढ़ा है। अतः स्वामी दयानन्द आर्यसमाज के दस स्वर्णिम नियमों के आदर्श धारणकर्ता एवं पालक रहे हैं। जो मनुष्य वा व्यक्ति अपने जीवन को सफल करना चाहते हैं उन्हें उनका अनुयायी व उन जैसा ईश्वर व वेद भक्त बनना ही होगा। नहीं बनेंगे तो जन्म-मरण के चक्र से मुक्त नहीं हो सकते। उनका वेद प्रचार और आर्यसमाज की स्थापना का उद्देश्य लोगों को जन्म-मरण के चक्र व दुःखों से मुक्ति दिलाना था। यह बात उनके अनुयायी भावनाओं में बह कर नहीं अपितु दर्शन शास्त्र के सिद्धान्तों का मनन कर स्वीकार करते हैं। संसार में केवल वेद ज्ञान ही पूर्ण सत्य एवं मुक्ति का मार्ग हैं। महर्षि दयानन्द ने इस मार्ग पर चलकर स्वयं आदर्श प्रस्तुत किया है और अपने प्राणों की आहुति दी है। आईये ! उनके जीवन व कार्यों का मनन करें सत्य को स्वीकार करें। इति ओ३म शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**